॥ॐ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः॥

॥श्री गणेशाय नमः॥

श्री शंकराचार्य गायत्री

विषय-सूची

॥ गायत्री जपमन्त्र ॥-..... 3
॥ प्राणायाम गायत्री महामन्त्र की उपासना ॥ 6
॥ सात व्याहृतियां ॥ 10
॥ गायत्री शिरोमन्त्र ॥ 12
॥ शास्त्रप्रमाण ॥-..... 14

॥ गायत्री जप-मन्त्र ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

गायत्री प्राणायाम-मन्त्रः

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं, ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्, ग्रापो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।

गायत्री-मन्त्र भाष्यार्थ: यः-सविता देवः, नः-अस्माकं धियः-कमणि धर्मादिविषया वा बुद्धीः, प्रचोदयात्-प्रेरयेत्, तत्-तस्य । सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य, देवस्य शीतमानस्य, सवितुः-सर्वान्तर्यामि तया प्रेरकस्य जगत्सष्ट: परमेष्वरस्य आत्मभूतं वरेण्यं-सर्वे रुपास्यतया' ज्ञेयतया च संभ जनीयं, भर्गः-अविद्या तत्कार्ययोर्भजंनाद्भर्गः, स्वयंज्योतिः परब्रहयात्मक तेज: धीमहि-तद्योह सोऽसौ योऽसौ सोऽहमिति वयं ध्यायेम ।

१. **<u>सामान्य अर्थ</u>** -जो सवितादेव हमारी बुद्धि अर्थात्, कर्मों को अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की विषय करने वाली बुद्धि (अन्तःकरण की वृत्तियों) को प्रेरित करता है, उस, सब श्रुतियों में प्रसिद्ध प्रकाशमान देव सर्वान्तर्यामी रूप से प्रेरणाकरने वाले जगत-सृष्टा, परमेष्वर के भर्ग का-अविद्या और उसके कार्य का भर्जन करनेवाला होने से 'भर्ग कहा जाता है। जो सब की आत्मा है, जो वरण करने योग्य है और जो सब के द्वारा उपास्य और ज्ञेय होने के कारण सावधानी से भजन करने योग्य स्वयं प्रकाश (सब का स्वरूप) परब्रह्मरूप तेज है, हम अभेदभाव से ध्यान (चिन्तन)करते हैं।

अथवा

यद्वा तदिति भर्गो विशेषणं- सवितुर्देवस्य तत्तादशं भर्गो धीमहि। कि तदित्यपेक्षायामाह—य इति लि गव्यत्ययः, यद्भग धियः प्रचोदयादिति तद्धयाये मेति समन्वयः॥

२. **<u>आध्यात्मिक अर्थ</u>** "तत्' यह भर्ग का विशेषण है। सविता देव का जो भर्ग है, उसका हम ध्यान करते हैं। वह क्या है ? इस अपेक्षा से कहते हैं। 'यः' इस शब्द का लिगव्यत्यय है (मन्त्र में यः' ऐसा पुलिङ्ग प्रयोग है, उसको 'यत्', नपुसक-लिङ्गरूप समझना चाहिए)। 'जो भर्ग अर्थात् परब्रह्म हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है उसका हम ध्यान करते हैं। इस तरह समन्वय (मेल) है।

अथवा

यद्वा यः सविता-सूर्यः, धियः-कमणि, प्रचोदयात्-प्रेरयति, , स तस्य सवितुः-सर्वस्य प्रसवितुः देवस्य-द्योतमानस्य सूर्यस्य तत सर्वैः श्यतया वरेण्यं-सर्वैः संभजनीयं, भर्गः-पापानां तापक ते जोमण्डलं, धीमहि-ध्यायेम मनसा धारयेम ।।

३. **<u>आधिदैविक अर्थ</u>** -जो सविता अर्थात सूर्य बुद्धि-गत कर्मों को प्रेरित करता है। उस समस्त विश्व के प्रसव आदि के कर्ता सवितादेव अर्थात् प्रकाशमान सूर्य का, जो सब के द्वारा देखा जाने के कारण प्रसिद्ध और चाहने योग्य-सब के द्वारा सावधानी से सेवन करने योग्य भर्ग (तेज) तथा पापों को दग्ध करने वाला अर्थात नष्ट, करने वाला तेजरूप मण्डल है, उसका हम ध्यान करते हैं अर्थात् उसको हम मन से धारण करते हैं ।

अथवा

यद्वा भर्गः शब्देनात्रान्नमभि धीयते यः सविता देवो धियः प्रचोदयति तस्य प्रसादान्भर्गोऽन्नादि लक्षणं फलं धीमहि धोरयामः तस्याधारभुता भवेमेत्यर्थः॥

४. **<u>आधिभौतिक अर्थ</u>** - भर्ग शब्द से यहां अन्न कहा जाता है । जो सूर्य देव बुद्धि को प्रेरित करता है उसके प्रसाद से भर्ग अर्थात अन्न आदि लक्षण वाले फल को हम धारण करते हैं अर्थात वही हमारा आधार है, यह अर्थ है।

॥ प्राणायाम गायत्री महामन्त्र की उपासना ॥

अथ सर्व देवात्मनः सर्वशक्तेः सर्वावभासकते जोमयस्य परमात्मनः । सर्वात्मकत्व प्रतिपादक गायत्री महामन्त्रस्योपासना प्रकार: प्रेका व्याश्यते- तत्र गायत्री प्रणवादि सप्त गायत्री व्याहृत्युपेतां, शिरः समेतां सर्ववेद सारमिति वदन्ति, एवं विशिष्ट गायत्री प्राणायामै रुपास्या ।।

अब सूर्वदेवरूप, सर्वशवित, सब के अवभासक, तेजरूप परमात्मा की सर्वात्मकता को सिद्ध करने वाले गायत्री मन्त्र की उपासना का प्रकार प्रकट करते हैं :

इस विषय में प्रणव आदि सात व्याहृतियों सहित अौर शिरोमन्त्र सहित गायत्री मन्त्र मन्त्र को 'सब वेदों का सार' कहते हैं। इस प्रकार (इन) विशेषणों से युक्त गायत्री की प्राणायामों द्वारा उपासना करनी चाहिए।

शुद्धा गायत्री जप में ।

ॐ भूर्भुवःस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

स प्रणव व्याहृतित्रयोपेता, प्रणवान्ता, गायत्री जपादिभिरुपास्या तत्र शुद्धा गायत्री प्रत्यक् ब्रह्म क्यप्रबोधिका ।

धियो यो नः प्रचोदयादिति–नोऽस्माकं धियो बुद्ध र्यः प्रचोदयात् प्रेरयेदिति- सर्व बुद्धिसंज्ञाऽन्तःकरण प्रकाशक सर्वसाक्षो प्रत्यगात्मेत्युच्यते, तस्य प्रचोदयाच्छब्दनिदिष्टस्यात्मनः स्व- रूपभूतं परं ब्रह्म तत्सवितुरित्यादि। पदैनदिश्यते, तत्र उरों तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृत इति तच्छब्देन प्रत्यग्भूत स्वतःसिद्ध परं ब्रह्मोच्यते

उस गायत्री की उपासना प्रणव सहित तीन व्याहृतियों और अन्त में प्रणव सहित मन्त्र के जप आदि से करनी चाहिए। इस विषय में शुद्धा गायत्री अर्थात्, व्याहृतित्रय सहित तथा शिरोमन्त्र रहित यह मन्त्र ब्रह्म के साथ जीव की एकता का बोध कराने बाली है।

'धियो यो नः प्रचोदयात' का अर्थ है। 'हमारी बुद्धि को जो प्रेरित करता है। इस से उसकी बुद्धि संज्ञावाला सब अन्तःकरणों का प्रकाशक, सब का साक्षी और प्रत्यगात्मा कहते हैं । उस 'प्रचोदयात्' शब्द से निर्देश किए हुए आत्मा का स्वरूप जो परब्रह्म है, | "तत्सवितुः' पदों से निर्देश किया जाता है। इस विषय में 'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः' अर्थात, ॐ तत सत् ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानन्दघन ब्रह्म का नाम कहा है, इस स्मृति प्रमाण के अनुसार "तत 'शब्द से प्रत्यग्भूत तथा स्वतः सिद्ध परब्रह्म कहा जाता है।

सवितुरिति सृष्टिस्थितिलयलक्षणकस्य सर्वप्रपञ्चस्य समस्तद्वैतविभ्रम स्याधिष्ठानं लक्ष्यते,

'सवितुः' का अर्थ है: सृष्टि स्थिति तथा लय लक्षणवाला जो यह द्वत प्रपंच (ससार) दिखाई देता है, उस सब के अधिष्ठान सविता का अभेदभाव से ध्यान करते हैं।

वरेण्य मिति सर्व वरणोयं निर: तिशयानन्दरूपं

'वरेण्यं' का अर्थ है–सब के द्वारा चाहने योग्य (वरणीय) परिपूर्ण आनन्दस्वरूप,

भर्ग इत्यविद्यादिदोष भर्जनात्मक-ज्ञानेकविषयत्वं,

'भर्ग' का अर्थ है- अविद्यादि दोषों का भर्जन करनेवाला केवल ज्ञान का विषय,

देवस्येति सर्वद्योतनामकाखंड़सदेकरसं सवितुर्देवस्येत्यत्र षष्टयर्थो राहोः शिरोवदौपचारिकः वदयादि सर्व दृश्य साक्षी लक्षणं यन्मे स्वरूपं तत्सर्वाधिष्ठानभूतं परमानन्दं निरस्तसमस्तानर्थरूपं स्त्र प्रकाशचिदात्मकं ब्रह्मत्येवं धीमहि ध्यायेम।

'देवस्य' का अर्थ है-सब को प्रकाशित करनेवाला अखंड सत् एकरस जो देव है। उसका। 'सवितुर्दैवस्य (भर्गः)' इस षष्टी विभक्ति के पद के औपचारिक (काल्पनिक अथवा अमुख्य) भेद में अभेद अर्थ है। जैसे 'राह का शिर': यहां पर राहु और शिर

वस्तुतः दो (अलग-अलग) नहीं है। शिर ही राहु है, राहु से शिर कुछ प्रथक् नहीं है, दोनों का अभेद है। इस लिए यहां पर षष्टी विभक्ति का भेदवाला अर्थ गौण है एव लक्षित-मुख्त-अभेदार्थ यह है कि अन्तःकरण आदि सब दृष्यवर्ग का साक्षी जो मेरा स्वरूप है वह सब का अधिष्ठान परमानन्द हैं, जिस में सब प्रकार के अनर्थों का निरास होता है और जो स्वयंप्रकाश चिदात्मारूप ब्रह्म है उस का हम-धीमहि'- अर्थात् अभेदभाव से चिन्तन करते हैं।

एवं सति सहब्रह्मणा (हिरण्य- गर्भन सह) स्वविवर्त्तजड़प्रपञ्चेन सह रजुमपन्यायेनापबाद सामा- नाधिकरण्य रूप्यैकत्वन्यायेन सर्व- साक्षी प्रत्यगात्मनो ब्रह्मणा सह तादात्म्यरूपमेकत्वं भवतीति सर्वात्मक ब्रह्मबोधकोऽयं गायत्री मन्त्रः संपद्यते

ऐसा होने पर, हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मा सहित और अपने स्वरूप में ही विवर्तभूत जड़ प्रपंच सहित होकर इस में रजुसन्याय से अपवाद और शक्ति का रजत न्याय से रजत भाव की एकता के न्याय से-सर्वसाक्षी

प्रत्यगात्मा के साथ तादात्म्यरूप एकता होती है। इस तरह सर्वात्मरूप ब्रह्म का बोधक यह गायत्री मन्त्र सिद्ध होता है ।

॥ सात व्याहृतियां ॥

ॐ भूः ॐ सुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ।'

सप्तव्याहतीनामयमर्थः-

भूरिति सन्मात्रमुच्यते,
भुव इति सर्वं भावं प्रकाशयतीति व्युत्पत्या चिद्रूपमुच्यते,
स्वरिति सुव्रियत इति व्युत्पत्या सुवरिति सुष्ठ, सर्वंद्रियमाण सुख स्वरूपमुच्यते,
मह इति महीयते पूज्यते इति व्युत्पत्या सर्वातिशयत्वमुच्यते,
जन इति जनयतीति जन सकलकारणत्वमुच्यते,
तप इति सर्वतेजोरूपत्वं,
एतदुक्त' भवति–लोके स्वरूपं तदोकारवाच्यं ब्रह्म वात्मनोऽस्य सच्चिद्र पस्वभावादिति ।
अथ भूरादयः सर्वे लोकाः उकारवाचा ब्रह्मात्मकाः न तद्वयतिरिक्तं किंचिदस्तीति व्याहृतयः सर्वात्मकब्रह्मबोधिकाः

सात व्याहृतियों का अर्थ यह है :'

भूः' से सन्मात्र (जिस से सब जगत उत्पन्न होता है) कहा जाता है,

भुवः'-जो सब को सत्ता देता है, इस व्युत्पत्तिसे चिद्रूप कहते हैं।

'स्वः'–' सुव्रियत" ' इस व्युत्पति से 'सुवः' जो सबों के द्वारा उत्कृष्टता से वरण किया जाता है। इस से उसे सुखस्वरूप आनन्द कहते हैं।

'महः' -जो महान समझा जाता है, पूजा जाता है । इस व्युत्पत्ति से यह सब से अधिक (अतिशय तेज) कहा जाता है।

'जनः'-'जो उत्पन्न करता है। इस व्युत्पत्ति से इस को सब का कारण कहते हैं।

'तपः, शब्द का अर्थ है ज्ञानस्वरूप"यस्य ज्ञानमयं तपः'–अर्थात जो सबको प्रकाशित करता है।

'सत्यम्'-जी तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्यत् अथवा सुषुप्ति, जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओं) में सर्व बाधारहित है ।

इस विषय में कहा है-सत चित। रूप स्वभाववाला होने से इस आत्मा का स्वरूप जो ब्रह्म ही है, लोक में वह 'ओंकार' नाम से वाच्य अर्थात्, कहा जाता है।

और भूः आदि में पुनः पुनः कही गया प्रणव-मन्त्र इन लोकों की ब्रह्मरूपता का प्रतिपादन करता है । उस ब्रह्म से व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है, इस से व्याहृतियां ब्रह्म की सर्वात्मकता का बोध कराती हैं।

॥ गायत्री शिरोमन्त्र ॥

'आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ।

गायत्रीशिरसोप्ययमेवार्थः

आप इति आप्नोतीति व्युत्पत्या व्यापकत्वमुच्यते,

ज्योतिरिति प्रकाशरूपत्वं (काश्दीप्तौ)

रस इतिसर्वातिशयत्व', अमृतमिति मरणादि संसारनिर्मु क्तत्वं

गायत्री शिरोमन्त्र का भी अर्थ इस प्रकार हैं :

आप्लृ व्याप्तौ व्याप्त धातु से 'आपः' शब्द बनता है । इस व्युत्पत्ति से इस की व्यापकता कही जाती है ।

'ज्योतिः' का अर्थ है-प्रकाशस्वरूप (क्योंकि 'काश्' दीप्ति के अर्थ से इस में स्वयंप्रकाश मानता है।

वही सर्वातिशायी (परमानन्दस्वभाव) होने से 'रस' कहा गया है। 'रसो वै सः

मरण आदि संसार भाव से निमुक्त होने के कारण वह 'अमृत' है।

सर्वव्यापि सर्व प्रकाशकत्वं सर्वोत्कृष्ट नित्यमुक्तत्वमात्मरूपं सच्चिदानन्दात्मकं यदोंकारवाच्यं ब्रह्म तदहमस्मीति गायत्री मन्त्रस्यार्थः

वह सब में व्याप्त और सब का प्रकाशक, सब से उत्कृष्ट और नित्यमुक्त आत्मरूप, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप 'ब्रह्म' जो ओंकार से वाच्य है, वह मैं ही हैं। इस प्रकार गायत्री मन्त्र का अर्थ है ।

॥ शास्त्र-प्रमाण ॥

गुहाशये ब्रह्महुताशनेऽहं कत्रिद मंशाख्यहविहु तं सत् विलीयते नेदमहं भवानी येष प्रकारस्त्वभिधीयतेऽत्र

बुद्धि-गुहा की ब्रह्मरूप अग्नि में 'कर्ता'और 'इदं' अंशवाला हवि हवन करने पर (जीवरूप) अहं का विलय हो जाता है। 'मैं यह (दृश्य प्रपंच) न होऊ' इस तरह यह (उपासना का) प्रकार यहां कहा जाता है।"

यदस्ति यद्भाति तदात्मरूपं नान्यत्ततो भाति न चान्यदस्ति ।। स्वभाव वित्प्रतिभाति केवला । ग्राह्य ग्रहीतेति मृपैव कल्पना ॥

जो कुछ है और जो भासने में आती हैं। वह सब आत्मरूप ही है । उस से अन्य कुछ नहीं भासता है और न कुछ अन्य है हो । स्वभाव से ही केवल सवित् प्रतिभासित होती है। अतः ग्राह्य और ग्रहीता केवल भूठी कल्पना-मात्र है ।

इति श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ। गायत्रो भाष्यं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमच्छङ्करभगवत्पाद द्वारा किया हुआ गायत्री-भाष्य का अनुवाद समाप्त हुआ।

शुभमस्तु-तत्सत् ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय:।।